कालिदास की मन्त्रकविता

हर्षदेव माधव

विक्रमोर्वशीयस्य प्रथमश्लोको भवति - वेदान्तेषु यमाहुरेकषुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसीति। वाणी, प्रमाणं, भक्तिः, अष्टाङ्गयोगः, मालामन्त्र इत्यादिसन्दर्भं गम्भीरतया विचार्य अमुं श्लोकं मन्त्रगर्भितं निरूपयति विविधप्रमाणैः।

इस लघु शोधपत्र में विक्रमोर्वशीयम् के नान्दी श्लोक 'वेदान्तेषु' का भक्तियोग, योगशास्त्र, तन्त्रागम, शाक्त-तन्त्र, न्याय आदि शास्त्रों के संदर्भ में एक मान्त्रिक अर्थघटन प्रस्तुत है। इस श्लोक में वाणी की चार भूमिकाएँ, उपासना के त्रिविध मार्ग, प्रमाणों का सन्दर्भ, नवधा भक्ति एवं अष्टांग योग का मार्ग, भग और भगवदी लक्षण, इस श्लोक में निहित मन्त्रों एवं मन्त्रों के संयोजन से प्रसूत मालामन्त्र, दिव्य चेतना के अवतरण की सिद्धि, श्लोक में निहित बीजाक्षरमन्त्र और सृष्टिक्रम की उपासना, अनुभूति के स्तरों की चर्चा दार्शनिक दृष्टि से कालिदास की कविता के रहस्यों का उद्घाटन करती है। तान्त्रिक दृष्टिकोण से कालिदास के ऋषित्व का मर्म यहाँ उद्घाटित है।

महाकवि कालिदास वाक्पति थे। वे व्यंजनाओं के शिखरों को पार करके महाकवित्व को प्राप्त हुए हैं। दूसरी ओर उनकी वाणी में दार्शनिकता होने से पश्यन्ती के दर्शन से ऋषित्व भी उन्होंने प्राप्त किया है। इस तरह ऋषित्व और कवित्व दोनों की अनुभूति होने के कारण उनकी कविता में युगसर्जकता है। यहाँ 'विक्रमोर्वशीय' के प्रथम श्लोक में निहित मन्त्र कविता का अभ्यास प्रस्तुत करने का उपक्रम है।

वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिर्नियमितप्राणादिभिर्मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभो निःश्रेयसायास्तु वः॥[१]

प्रस्तुत श्लोक में सामान्यतः नान्दी श्लोक होने से शिव की स्तुति है ऐसा विद्वानों ने माना है। इस श्लोक में उपनिषदों में ब्रह्मरूप से निरूपित, आकाश और पृथ्वी में व्याप्त, 'ईश्वर' ऐसे यथार्थ अक्षरवाले, प्राणायाम आदि द्वारा मुमुक्षु लोगों के लिए अन्तःकरण में अनुभूति-योग्य, स्थिर भक्ति से प्राप्त शिव की स्तुति की गई है।

प्रस्तुत श्लोक में निम्नलिखित मन्त्र निहित हैं:–

वेदान्दवेद्याय (वेदान्तगम्याय) नमः।
एक पुरुषाय नमः। रोदसी व्याप्ताय नमः।
ईश्वराय नमः। अनन्यविषयाय नमः।
अशब्दाय नमः। यथार्थाक्षराय नमः।
अन्तः स्थिताय नमः। मुमुक्षुमृग्याय नमः।
योगिनां गम्याय नमः। स्थाणवे नमः।
स्थिरभक्तियोगसुलभाय नमः।
निःश्रेयोदात्रे नमः।

वाणी के सन्दर्भ में यह श्लोक–

'आहुः' पद से बैखरी वाणी का निर्देश है।
'ईश्वरः' परावाणी का द्योतक है।

'व्याप्य स्थितः रोदसी' - मध्यमा - अन्तरिक्ष में व्याप्त वाणी को सूचित करता है।

'अन्तर्यश्च' से पश्यन्ती वाणी का इंगित होता है।[२]

* आहुः – अभिधा स्तर में व्याप्त वाणी की व्यावहारिक सत्ता को सूचित करता है।

'शब्दो विनाऽप्यक्षरः' मुख्यार्थबाध से लक्षणा का निर्देश करता है।

'अन्तःस्थित' अर्थात् शब्द और अर्थ दोनों में प्रभावक गूढ व्यंजना का संकेत करता है।

'स्थाणु' से शब्द ब्रह्म का सूचन होता है।

त्रिविध मार्ग का सूचन–

'वेदान्तेषु' शब्द से ज्ञानमार्ग का सूचन होता है।

'मृग्यते' पद द्वारा कर्ममार्ग सूचित होता है।

'स्थिरभक्ति' पद के द्वारा भक्तिमार्ग का स्थापन होता है।

प्रमाण के सन्दर्भ में–

'वेदान्तेषु' द्वारा 'शब्द प्रमाण' से ज्ञानप्राप्ति होती है यह बात सिद्ध होती है। 'ईश्वरः' पद स्वतः प्रमाण अथवा प्रमाणों के द्वारा ज्ञातव्य 'प्रमेय' का निर्देश करता है।

'अन्तर्यश्च' पर योगियों की अनुभूति की ओर संकेत कर के योगियों के द्वारा वर्णित परम तत्त्व शिव ही है ऐसा तात्पर्यार्थ से आप्तप्रमाण के द्वारा ज्ञातव्य शिव ही है यह पक्ष का समर्थन करता है।

'स स्थाणुः' यह पद प्रत्यक्ष शिव का बोधक है।

अतः इस श्लोक में प्रत्यक्ष प्रमाण भी उपस्थित है।

'मृग्यते' पद में अनुमान प्रमाण का सारगर्भ उल्लेख भी निहित है।[३]

भक्ति के संदर्भ में–

वेदान्त में अद्वैत ब्रह्म परमतत्त्व होने से निर्गुण ब्रह्म शिव ही है और 'स्थाणु' के रूप में वे सगुण ब्रह्म हैं ऐसा प्रतिपादन है।

वेदान्त को समझने वाले जिज्ञासु भक्त, ईश्वर के रूप में शिव के उपासक आर्त, अन्तस्तत्त्व-आत्मा-के रूप में शिवत्व का अनुभव करने वाले ज्ञानी और विविध आकांक्षाओं से स्थिर भक्ति करने वाले, इच्छित प्राप्ति से भक्ति द्वारा शिव को सुलभ मानने वाले अर्थार्थी भक्तों का उपास्य तत्त्व शिव है ऐसा तात्पर्य है।

अष्टांग योग के संदर्भ में–

स्थिरभक्तियोग - यम, नियम

स्थाणु - आसन

प्राणादिभिः - प्राणायाम

अनन्यविषयः - धारणा, प्रत्याहार

व्याप्य स्थितं रोदसी - आज्ञाचक्र में ध्यान का सूचन

निःश्रेयसाय अन्तःस्थितम् - समाधि

इस तरह अष्टांग योग से शिव की उपासना एवं अनुभूति का तात्पर्य है।

नवधा भक्ति का संदर्भ–

'वेदान्त' - उपनिषद् - श्रुति है - श्रवण

ईश्वर - स्वामी, दास्यभक्ति

मुमुक्षिभिः मृग्यते - स्मरण, मनन से सतत सामीप्य की अनुभूति

अनन्यविषयः - अनन्यभाव से शरणागति

एकपुरुषः - सर्वात्मभाव से चिंतन, स्मरण

भक्तियोग - कीर्तन, पादसेवन

स्थाणु - पूजन, वंदन

सुलभ - सख्य[४]

शिव ईश्वर है, अनन्य है, मोक्ष देने के लिए समर्थ है।

इस श्लोक में गुणमाहात्म्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, वात्सल्यासक्ति, तन्मयासक्ति, रूपभक्ति - इस तरह भक्ति के विविध स्वरूपों का भी संकेत है।

भक्ति के तीन प्रयोजन होते हैं। परमतत्त्व की प्राप्ति सात्त्विक है। यश, ऐश्वर्य और इष्टप्राप्ति राजस है। दम्भ, आडम्बर, मात्सर्य के लिए होती है वह भक्ति तामस है। प्रस्तुत श्लोक में वेदनिर्दिष्ट, वेदान्तगोचर, योगगम्य, ज्ञानमार्गी सात्त्विक भक्ति व्यंग्य है।

भग के संदर्भ में–

भगवान में ६ भग होते हैं। जिसके पास ६ भग होते हैं वह ही भगवान है।

'ईश्वर' शब्द से ऐश्वर्य सूचित है।

वेदान्तश्रवण - ज्ञान और वैराग्य का बोधक है।

योगिओं का मुमुक्षुत्व - ज्ञान, वैराग्य और धर्म के सूचक हैं।

स्थिर भक्ति का निर्देश शिवोपासना में निहित धर्म कीर्ति, श्री और ऐश्वर्य की प्राप्ति का बोधक है।

भगवदी लक्षण–

भक्त के लक्षणों के सन्दर्भ में 'वेदान्त मार्ग' से सत्य, अपरिग्रह, गर्वरहितता, मनोनिग्रह, निस्पृहता, निर्मोहिता, मननशीलता, निर्विकारता, सम्यक्ज्ञानिता आते हैं। 'ईश्वर' पद से उसके उपासक में हरिभजनपरायणता, प्रभु-शरण की तत्परता, दयालुता का विकास करने की वृत्ति होती है।

योगियों के द्वारा उपास्य शिव के निर्देश के द्वारा इन्द्रिय - जय, निर्विकारिता, सम्यक्ज्ञान, षड्रिपुजय, तपस्वित्व, निष्कंपता, मननशीलता का बोध होता है।

'स्थिर भक्ति' के उल्लेख से अद्रोह, दयालुता, धर्मदृढ़ता, दृढाश्रय, परकल्याणवृत्ति का सूचन होता है। इस तरह तीस भगवदीलक्षण के संदर्भ में यह श्लोक ऐसे लक्षणों का चिंतन करना एवं स्वयं में उनका विकास करना सूचित करता है।[५]

मालामन्त्रः–

इस श्लोक में निम्नलिखित मालामन्त्र सूचित है– ऊँ वेदान्तवेद्याय एकपुरुषाय ईश्वराय अनन्यविषयाय अन्तःस्थिताय मुमुक्षुमृग्याय योगीश्वराय स्थाणवे स्थिर भक्तियोगसुलभाय शिवाय नमः।

श्लोक का व्यापः–

रोदसी - आकाश और पृथ्वी

ईश्वर - सर्वत्र व्यापक, त्रण भुवनों में व्याप्त

प्राणादिभिः - वायुतत्त्व

अन्तर्यश्च - दहराकाश में व्याप्त परमतत्त्व

स्थिरभक्तियोगसुलभः - अन्तर्यामी, सर्वत्र अनुभूतिगम्य

इस रूपक के भरतवाक्य में श्री और सरस्वती का मिलाप सज्जनों का भूति देने वाला है। ऐसा कथन है–

परस्पर विरोधिन्यरेकसंश्रयदुर्लभम्।
सङ्गतं श्री सरस्वत्योर्भूतयेऽस्तु सदा सताम्।।[६]

'नान्दी' में 'नि:श्रेयस्' की प्रार्थनार के बाद भरत वाक्य में श्री सरस्वती एवं भूति की कामना से तान्त्रिक अर्थघटन अनुसार यहाँ सृष्टिक्रम से आराधना हुई है। सृष्टिक्रम में मोक्ष से भोग की ओर यात्रा होती है। भरतवाक्य में श्री और सरस्वती का उल्लेख सूचित करता है कि इसमें कहीं महाकाली निहित होनी चाहिए। अत: नान्दी श्लोक में 'स्थाणु' अर्थात् स्थिर काल अर्थात् महाकाल का अर्थ मुझे अभिप्रेत लगता है। सृष्टि की उत्पत्ति के पहले कालतत्त्व स्थिर होता है– यही नि:समय की स्थिति 'स्थाणु' पद से महाकाल को सूचित करती है। 'स्थिरभक्ति' अर्थात् काली के योग से शिव सुलभ हो सकते हैं अन्यथा वह 'शववत्' होने से 'स्थाणु' ही है। इस तरह स्थिर भक्ति रूप काली से सेवित 'ईश्वर' महाकाल ही नि:श्रेयस् देते हैं। ऐसा अर्थग्रहण होने से महाकाली, महालक्ष्मी और महासरस्वती का त्रिकोण पूर्ण बनता है। स्थिर भक्ति रूप काली के संयोग वाले शिव सामरस्य एवं नि:श्रेयस् दे सकते हैं। 'ईश्वर' का 'ई' महाकाल के साथ संयुक्त होने से 'महाकाली' भी यहाँ गूढ़ रूप से सूचित है।

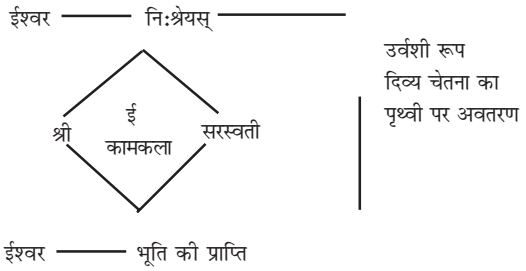

इस तरह 'नि:श्रेयस्' का एक स्वरूप-दिव्य चेतना-'उर्वशी' - का अवतरण यहाँ महामाया के द्वारा श्री और सरस्वती से भूति-भोग-दायक है यह तात्पर्य है। ईश्वर का 'ई' तन्त्रशास्त्र की कामकला है।

श्लोक का छन्द एवं मन्त्र

यह श्लोक मन्दाकान्ता छन्द में है। अत: १७ x ४ = ६८ अक्षर होते हैं। पुन: ८ + ६ = १४ होता है। चतुर्दशी शिव की रात्रि है। पुन: १+४=५ से शिव

पञ्चाक्षरी मन्त्र है। इस श्लोक में सत्रह अक्षर वाले दो मन्त्र गर्भित हैं ऐसा मुझे प्रतीत होता है।

एकपुरुष = तत्पुरुष

(१) तत्पुरूषायेश्वरायान्त:स्थिताय स्थाणवे नम:

(२) एकपुरुष = ब्रह्म

परंब्रह्मणेश्वरायान्त:स्थिताय स्थाणवे नम:।

'ल्हीं' बीजमन्त्र–

'रोदसी' अर्थात् आकाश एवं पृथ्वी। आकाश का 'ह' बीज है, पृथ्वी का 'ल' बीज है। रोदसी में 'र' निहित है। ईश्वर का 'ई' बीज एवं एकपुरुष का 'म' परमात्मबीज को जोड़ने से 'ल्हीं' बीज होता है।

वेद = ऊँ, ईश्वर = ई, स्थाणु = व, आकाश = आ, वियत् (आकाश) का श बीज, भक्ति = नम: प्राण-य बीज इस तरह श्लोक से वर्णमाला के बीजमन्त्रों का उद्धार करने से 'ऊँ नम: शिवाय' मन्त्र हो सकता है।[७]

श्रीयन्त्र के संदर्भ में–

एक पुरुष = १, रोदसी = २ ईश्वर = १

इस तरह चार शिव त्रिकोण सूचित है।

'प्राण' से पाँच शक्ति त्रिकोण सूचित है।

वेदान्त = १०५ उपनिषद् १ + ८ = ९ भी

श्रीयन्त्र के त्रिकोण का सूचक है।

अन्तर्यश्व में अन्तर्याग सूचित है।

स्थिरभक्ति = पराम्बा और सुलभ शब्द 'स्थाणु' शिव के साथ पराशक्ति का सामरस्य सूचित करता है।

एकपुरुषम् - श्रीयन्त्र के मध्य त्रिकोण में बिन्दु का इंगित है। कालिदास की मन्त्रकविता का यह गर्भितार्थ है।

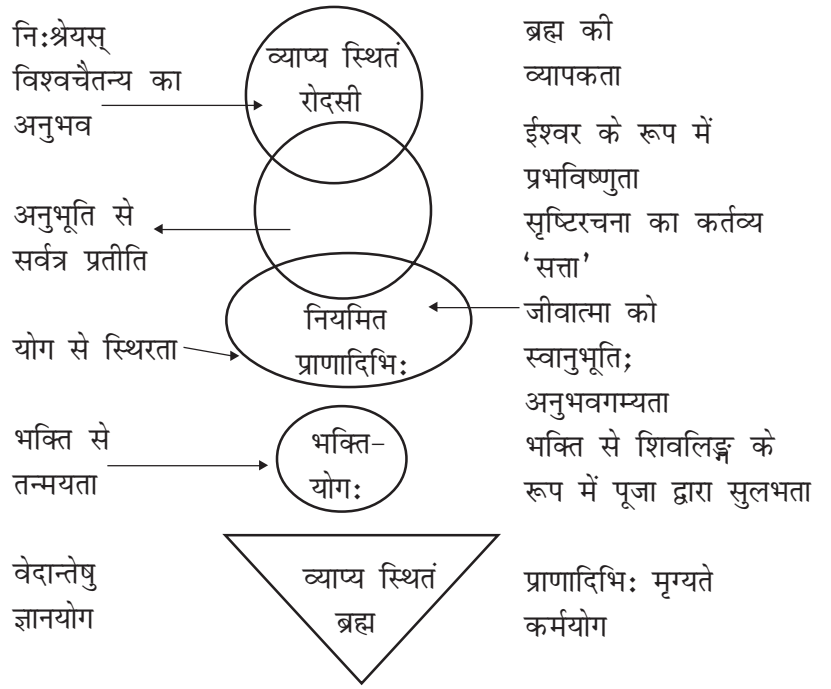

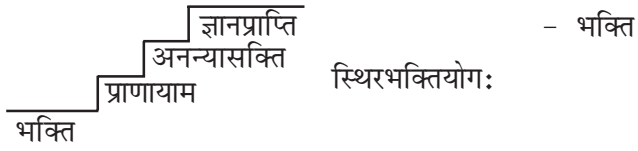

श्लोक को उलटे क्रम से पढ़ने से अनुभूति के सोपानों का ज्ञान होता है।

इस तरह कालिदास की कविता केवल कविता नहीं है, उसमें ऋषित्व की सहज, नैसर्गिक दार्शनिकता भी है। यह आध्यात्मिक तान्त्रिक दृष्टि से एक निदर्शन ही है।

---

१. विक्रमोर्वशीयम् १-१ कालिदास ग्रंथावली, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान लखनऊ, षष्ठ, विक्रम संवत् २०६३
२. चूनीभाई भट्ट 'पराम्बा विलास' सूरत, १९९६ : प्रकरण-२२ पृ. १३६-१४०
३. रतिभाई नायक 'वस्तु संख्याकोश' पार्श्व पब्लिकेशन, १९९१ : पृ. १४८
४. वही : पृ. १५५
५. वही, पृ. १५६
६. विक्रमोर्वशीयम् पृ. २८
७. पराम्बाविलास, पृ. ८८ - १२२ और श्रीश्रीतन्त्राभिधानम् कोलकता, १९१३